पूज्य श्री लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार, गाथा १३, ता. ५-४-१९८९
भिंड, प्रवचन नंबर P ०८

Version 2

यह श्री समयसारजी परमागम शास्त्र है, जो शुद्धात्मा को बतानेवाला शास्त्र है। दृष्टि के विषय का दान दिया कुंदकुंद आचार्य भगवान ने। दृष्टि का विषय जो शुद्धात्मा है, वह दान दिया है सबको। जो दृष्टि का विषय का दान दिया है, साथ-साथ में परिणामों का यथार्थ ज्ञान भी कराया है। क्या कहा? दृष्टि का विषय तो केवल शुद्धात्मा (है), जो नवतत्त्व है, परिणामरूप, उससे रहित है। आत्मा अरूपी होने से आर-पार दिखता है, आड़ तो सब पुद्गल की है। पुद्गल तो आत्मा है ही नहीं। आहाहा!

यह समयसारजी परमागम शास्त्र है। दृष्टि के विषय का दान दिया है और दृष्टि के विषय का दान तो दिया है, मगर नवतत्त्व के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान भी साथ-साथ में कराया है। अयथार्थ का परिहार कराया है, अभूतार्थनय से कहा हुआ नवतत्त्व, उसका परिहार कराया है और नवतत्त्व का यथार्थ, भूतार्थनय से ज्ञान कराया है और दृष्टि का दान दिया है। आहाहा! ऐसे समयसार शास्त्र परमागम, भारत का भगवान है। अद्वितीय शास्त्र है। इसमें १३ नंबर की गाथा है। इसकी १३ नंबर की गाथा का भावभासन होता है, उसको १३वां गुणस्थान, केवलज्ञान जल्दी ही आ जाता है। बहुत लेट नहीं होता हे, ऐसी अपूर्व गाथा है। उसमें आचार्य भगवान ने फ़रमाया कि अभूतार्थनय से तो नवतत्त्व तूने जाना, अनंतबार जाना। नवतत्त्व का ज्ञान, व्यवहारनय से नवतत्त्व का ज्ञान कोई अपूर्व लब्धि नहीं है। व्यवहारनय से नवतत्त्व को जानना, वो तो सामान्य है। वो ही नवतत्वों का ज्ञान भूतार्थनय से करने से कर्तृत्वबुद्धि छूट जाती है और अकर्ता ऐसे ज्ञायक पर द्रष्टि आ जाती है, अनुभूति होती है, तो कर्ताबुद्धि छूटती है। कर्तत्वबुद्धि छूटी तो अनुभव हुआ और नवतत्त्व का ज्ञान होता है, कि होने योग्य होता है, मैं करनेवाला नहीं। आहाहा! परिणाम अपने आप अपने स्व-अवसर में, स्वकाल में, उसकी काललब्धि के काल में....काल, यह बाहर के काल की बात नहीं है। वो पर्याय का स्वकाल होता है, उत्पाद का, पर्याय के उत्पाद का नाम स्वकाल है, उसका स्वकाल होता है, तभी पर्याय उत्पन्न होती है, उसको कोई करनेवाला नहीं है। ऐसा भूतार्थनय से नवतत्त्व का ज्ञान भी कराया है और शुद्धात्मा का दान भी दिया है। आहाहा! ऐसी अपूर्व गाथा है, वह चलती है अभी।

जो व्यवहारनय से कहा हुआ नवतत्त्व, उसका नाम, जिनके लक्षण जीव, तो यह जीव है ना, वह व्यवहार जीव है। जीव शब्द है वह व्यवहार जीव है, पर्याय, सब पर्याय का भेद है, नौ - अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष है। उनमें एकत्व प्रगट करनेवाले, नौ में से एक को निकालो। नौ को जानना, भेद को जानना तो व्यवहार है और नवतत्वों का लक्ष्य छोड़कर उसमें छुपी हुई आत्मज्योति है, उसका अन्तर्मुख होकर ज्ञानानंद परमात्मा का लक्ष्य करना, उसका नाम अनुभूति है। वह, शुद्धनय से शुद्धात्मा जानने में आता है। व्यवहारनय से जानने में आता नहीं, क्योंकि व्यवहारनय का विषय पर है और निश्चयनय का विषय स्वद्रव्य है। अशोक जी! अशोक है ना नाम?

क्या कहा? नौ तत्त्व हैं ना, भेद, वह पर्याय है, व्यवहारनय का विषय है। जो नय भेद को प्रसिद्ध

करती है, वह ज्ञान अभेद को प्रसिद्ध कर सकता नहीं। ज्ञान ही बदल जाता है, विषय बदलता है तो ज्ञान भी बदल जाता है। पाटनीजी! यह पुण्य है, पाप है, आस्रव है, संवर है, निर्जरा है, बंध है, वह नौ प्रकार का ज्ञेय है, नौ प्रकार का ज्ञेय है, एक प्रकार का नहीं है। पुण्य-पाप एक ज्ञेय और आस्रव दूसरा ज्ञेय, संवर दूसरा ज्ञेय, ज्ञेय है ना, एक-एक पर्याय ज्ञेय है। तो वह जो व्यवहारनय है, एक-एक तत्त्व को जानती है, तो उसका नाम व्यवहारनय है।

भेद को जाने सो व्यवहार और जिस नय से भेद जानने में आता है, ऐसे व्यवहारनय से आत्मा का अनुभव होता नहीं है। वह ज्ञान बदल जाता है। जो भेद के सन्मुख ज्ञान था, वह भी ज्ञान वहाँ से फिर गया, अंदर में आता है, तो जो ज्ञान अन्तर्मुख हुआ, उसमें नौ का भेद दिखाई देता नहीं है। नौ की अस्ति होने पर वह नौ तत्त्व, ध्यान का ध्येय तो नहीं, मगर ज्ञान का ज्ञेय भी नहीं। अनुभव के काल की बात बताता हूँ। आहाहा! क्या कहा? कि जो नवतत्त्व का भेद है, उसके ऊपर नजर रखता है कोई, रखता है, नौ के भेद के ऊपर लक्ष्य करता है, तो भेद के लक्ष्य से अभेद का ज्ञान नहीं होता है। भेद को जानकर भेद का लक्ष्य छोड़ना पड़ेगा, जो आत्मा का दर्शन करना हो, तो। भेद को जानना चालू रखे, परद्रव्य को जानना चालू रखे, नवतत्त्व परद्रव्य हैं, उनको जानना चालू रखे और स्वद्रव्य जानने में आए, ऐसा बननेवाला है नहीं। तो नवतत्त्व को जाननेवाली एक व्यवहार नय, उसकी चक्षु बंध कर दे।

कर्ता तो है ही नहीं, इसलिए कर्ता बंद कर दे, ये तो अजेंडा पर है ही नहीं, क्योंकि अकर्ता को कोई कर्म नहीं होता है, ऐसे ज्ञाता का कोई कर्म होता नहीं। ज्ञाता में कोई नवतत्त्व का भेद ज्ञेय तो होता है, मगर नवतत्त्व कर्म होता नहीं। आहाहा! तो ये नवतत्त्व हैं, उसके ऊपर से लक्ष्य हटा दे। हट जाता है, लक्ष्य तो, स्वयं इधर ढलता है उपयोग, तब वहाँ से लक्ष्य हट जाता है। यह तो सबको अनुभव है। थाली में जो आया सब (चीज़ें), तो जब लड्डू के ऊपर है लक्ष्य, तो सब्जी पर नहीं है, (जब) सब्जी पर है तो लड्डू पर नहीं है। यह तो सब को मालूम है कि नहीं? तो वो वहाँ लक्ष्य था, अनंतकाल से भेद पर, परद्रव्य पर लक्ष्य था, वो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! परद्रव्य को जानने से अध्यवसान नामक पाप का जन्म होता है, अज्ञानी के लिए। ऐसा पाठ है समयसार में। छहद्रव्य, धर्मास्तिकाय आदि को मैं जानता हूँ, अध्यवसान भावबंध है। भैया! तेरे आत्मा को तू जान। आत्मा को छोड़कर उसको क्यों जानता है? आहाहा!

ऐसे नवतत्त्व के भेद का लक्ष्य छोड़कर, अभी क्या फ़रमाते हैं आचार्य महाराज? कि **उनमें एकत्व प्रगट करनेवाले भूतार्थनयसे,** यानि सत्यार्थनय से, यानि अंतर्मुखी ज्ञान से.... बहिर्मुख ज्ञान में नव का भेद मालूम पड़ता था, तो भगवान आत्मा का स्वभाव तिरोभूत हो जाता था, दिखने में आता नहीं था। अब वह नवतत्त्व के भेद का लक्ष्य छूट गया, साथ में इन्द्रियज्ञान भी रुक गया, साथ में इंद्रियज्ञान रुक गया और अभिमुख ज्ञान नया अनंतकाल से नहीं प्रगट हुआ, ऐसा प्रगट हुआ, तो उसका नाम शुद्धनय है। जो शुद्ध को प्रसिद्ध करे, उसका नाम शुद्धनय है।

तो **भूतार्थनयसे एकत्व प्राप्त करके,** मैं एक हूँ। **एकत्व प्रगट करनेवाले भूतार्थनयसे एकत्व प्राप्त करके,** क्या कहा, **एकत्व प्रगट करनेवाले** कि मैं एक हूँ, ऐसा प्रगट करनेवाले भूतार्थनय, अंतर्मुखी ज्ञान, अंतर्मुखी ज्ञान हुआ तो एकत्व प्राप्त हो गया। आहाहा! एक शुद्धात्मा मैं हूँ,

ऐसा अनुभव हो जाता है। वह अनुभव के काल में, निर्विकल्पध्यान में, सम्यग्दर्शन का जन्म होता है। अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को विकल्प अवस्था में अनुभूति नहीं होती है, अनुभूति के बिना सम्यग्दर्शन का जन्म होता नहीं है। **एकत्व प्राप्त करके** यानि मैं एक हूँ, एकोअहम् आहाहा! मैं शुद्धचिद्रूपोहम्। मैं कौन हूँ? शुद्ध चिद्रूप परमात्मा हूँ। आहाहा! परमात्मा हैं सब आत्मा। है, तो ज्ञान में आ जाता है। उसके लिए, उसको टाइम के लिए टेलीफोन करना नहीं पड़ेगा, पत्र लिखना नहीं पड़ेगा। वो तो हाजराहजूर प्रत्यक्ष परमात्मा विराजमान है।

तेरी दृष्टि इधर (पर में) है और भेद पर है। बहुतों का (उपयोग) तो प्रमाण से बाहर ही भटकता है। ज़्यादातर, तो प्रमाणज्ञान का जो विषय द्रव्य-पर्याय स्वरूप वस्तु है, उससे बाहर ही भटकता है। ऐसा किया, उसने ऐसा किया, इसने ऐसा है। अरे! ऐसा-कैसा की तू छोड़ दे बात। आहाहा! तू तो वर्तुल से बाहर चला गया। तेरा वर्तुल जानने के लिए, वह तो द्रव्य-पर्याय रख पहले, पहले। शुरुआत में। पर का जानना तो बंद कर दे। आहाहा!

गुरुदेव ने तो वहाँ तक कहा, (कि) एक दफ़ा बात आयी, गुरुदेव के सामने। इंदौर में ठराव किया। अज्ञानी एकट्ठा होता है ना तो ठराव करता है ना। उसको नहीं गमे (पसंद आए) तो ठराव कर दे। एक द्रव्य दूसरा द्रव्य का कर्ता नहीं है (ऐसा सुनकर), (अज्ञानी ने कहा) तो कर्ता (तो) है, और कर्ता नहीं है, ऐसा (अगर) कोई कहता है, तो दिगंबर जैन नहीं है। ठराव पास कर दिया, सबने सही कर दिया। समझे? अज्ञानी ने ठराव किया, कर्ताबुद्धि का घट्ट (पुष्ट) कर दिया, कर्ताबुद्धि को पुष्ट कर दिया। उनके सामने, गुरुदेव ने.. १३ व्याख्यान का एक पुस्तक है, सारी ज़िन्दगी पढ़ने जैसा है। अध्यात्म प्रवचन रत्नत्रय! इसमें ९ व्याख्यान ३२० समयसार की गाथा पर हैं, ३ व्याख्यान प्रवचनसार की ११४ गाथा पर हैं, एक व्याख्यान २७१ कलश पर है, कलश पर है, वह राजमलजी की टीका है। राजमलजी की टीका है। उसके ऊपर गुरुदेव का व्याख्यान, १३ व्याख्यान, तेरह पंथ (है) तो १३ व्याख्यान कहते हैं। आहाहा!

और जिसको अल्पकाल में केवलज्ञान होनेवाला है, इसलिए १३ का अंक आ गया, समझे? शकुनवंता है वो। बिक्री में है, खरीदने जैसा है। और १०० साल की उम्र हो जाए, तब तक वह पढ़ने जैसी चीज़ है। ध्येय का स्पष्ट स्वरूप इसमें आया। ध्यान कैसे करें? आजकल ध्यान की शिविर लगती है। मगर ध्येय क्या? मालूम नहीं। और ध्यान कैसे होवे? वो भी मालूम नहीं। आहाहा! और ध्येय का जब ध्यान होता है, तब आत्मा ध्याता बन जाता है। ध्यात-ध्यान-ध्येय, ज्ञाता-ज्ञान और ज्ञेय, ऐसी एकता होती है ना। आहाहा! छहढाला में आता है। आता है ना पंडित जी? ऐसे, ये **भूतार्थनयसे एकत्व प्राप्त करके,** एक शुद्धात्मा मैं हूँ, ऐसा दृष्टि में आता है। शुद्धनयरूप से स्थापित आत्मा की अनुभूति, शुद्धनय के द्वारा जैसा शुद्धात्मा है, ऐसा अनुभव हो जाता है।

उस टाइम में, उस समय में, जो शुद्धात्मा उपादेयरूप से जानने में आता है, उसका नाम स्वप्रकाशक है। क्या कहा? स्वप्रकाशक लक्षण से आत्मा की उपलब्धि होती है। स्वपरप्रकाशक के बारे में बहुत चर्चा हुई कि स्वप्रकाशक लक्षण से आत्मा लक्षगत होता है, ऐसा नियमसार का पाठ है। उपादेय तत्त्व में स्व-पर उपादेय नहीं है, इसीलिए स्व-पर में आत्मा की अनुभूति नहीं है। स्व-पर

उपादेय हो तो, द्रव्य और पर्याय..स्व-पर उपादेय नहीं है, अकेला सामान्य स्वभाव उपादेय है और उसका विषय करनेवाला भी स्वप्रकाशक ज्ञान होता है। उसमें अनुभव होता है। और अनुभव हुआ तो वो ही टाइम स्वपरप्रकाशक ज्ञान, निश्चय से स्वपरप्रकाशक प्रगट होता है।

ज्ञान ज्ञायक को जानता है वह स्व, और ज्ञान आनंद को भी जानता है। तो आनंद है, वह पर है। ज्ञान की अपेक्षा से आनंद पर है, तो स्वपरप्रकाशक अनुभूति के काल में निर्विकल्पध्यान में, निश्चय स्वपरप्रकाशक प्रगट होता है, ज्ञान। और बाहर आता है साधक, तो स्व आत्मा और देव-गुरु-शास्त्र पर, लोकालोक पर, ऐसा स्वपरप्रकाशक का व्यवहार प्रगट होता है। निश्चय स्वपरप्रकाशक जिसको प्रगट हो, उसको स्वपरप्रकाशक व्यवहार है। स्वपरप्रकाशक भी कथंचित् है, सर्वथा नहीं है। जगत स्वपरप्रकाशक को सर्वथा मान बैठा है। स्वपरप्रकाशक का क्या स्वरूप है? यह स्व और ये पर, व्यवहार का पक्ष है। व्यवहार तो नहीं है अज्ञानी के पास, क्योंकि निश्चय स्वपरप्रकाशक प्रगट हुए बिना व्यवहार स्वपरप्रकाशक का जन्म होता नहीं है। यह सब शास्त्र में है, मगर फुर्सत किसको है (पढ़ने की)? आहाहा! जिसको फुर्सत है, उसका काम हो जाता है।

तो शुद्धनयरूप से स्थापित आत्मा की अनुभूति, आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। आहाहा! वेदन-प्रत्यक्ष है आत्मा, प्रदेश-प्रत्यक्ष भले न हो, मगर वेदन-प्रत्यक्ष है। जैसा अंधा शक्कर खाता है, तो प्रत्यक्ष है या परोक्ष? प्रत्यक्ष है, ऐसा टोडरमल जी साहब ने दृष्टांत दिया है। अनुभूति, जिसका लक्षण आत्मख्याति है, (उसमें) आत्मा की प्रसिद्धि हो जाती है। ओहोहो! मैं चिदानंद आत्मा हूँ। आहाहा! संसार का अंत हो जाता है। वह प्राप्त होती है, अनुभूति प्राप्त होती है। (**शुद्धनयसे नवतत्वोंको जाननेसे आत्माकी अनुभूति होती है**।) फिर से दोहराया कोष्ठक में कि भूतार्थनय से नवतत्त्व (को) जाना, तो सम्यग्दर्शन होता है। इधर कोष्ठक किया, **(शुद्धनयसे नवतत्वोंको जाननेसे आत्माकी अनुभूति होती है, इस हेतुसे यह नियम कहा है।)** नियम, व्यवहारनय से नवतत्त्व को जाना। है तो व्यवहारनय का विषय, व्यवहारनय का विषय को तू भूतार्थनय, निश्चयनय से जान कि वह स्वयं प्रगट होता है, कोई उसका करनेवाला नहीं है।

वहाँ, अभी आगे **वहाँ, विकारी होने योग्य**, आहाहा! एक-एक शब्द की कीमत है। **वहाँ, विकारी होने योग्य और विकार करनेवाला** - पुण्य या पाप का परिणाम जो होता है, वह होने योग्य होता है, करने से प्रगट नहीं होता है। कोई कर्ता ही नहीं उसका। सत् का कोई करनेवाला होता नहीं है, सत् स्वयं है, स्वयं उत्पन्न होता है और स्वयं व्यय हो जाता है। तो **होने योग्य** विकारी, **विकारी होने योग्य**, आहाहा! थवा योग्य, **होने योग्य**, वह क्षणिक-उपादान है। क्या कहा? नैमित्तिक नहीं है। पहले, पुण्य-पाप को नैमित्तिक मत देखो। निमित्त के लक्ष्यवाले को नैमित्तिक दिखता है, शुद्धात्मा के लक्ष्यवाले को क्षणिक-उपादान दिखता है। क्या कहा? पहले तो जगत में कोई निमित्त ही नहीं है, ऐसा ले लो। क्या कहा? सब उपादान हैं। त्रिकाल-उपादान और क्षणिक-उपादान, दो प्रकार हैं। निमित्त की स्थापना करने से नैमित्तिक पर्याय दिखती है और नैमित्तिक दिखती है, तो उसका कर्ता मैं हूँ, ऐसा दिखाई देता है। क्या कहा? निमित्त के लक्ष्य से पुण्य-पाप होता है, वह निमित्त है और पुण्य-पाप नैमित्तिक है। जिसको पर्याय नैमित्तिक दिखती है, वह उसका ज्ञाता नहीं रह सकता है, कर्ता बन जाता

है। और जिसको भूतार्थनय से होने योग्य है, ऐसा जानता है, उसका नाम क्षणिक-उपादान है। तो क्षणिक उपादानवाला, क्षणिक-उपादान को ज्ञान का ज्ञेय बनाता है। और नैमित्तिकवाले को (वह) कर्ता का कर्म बन जाता है।

बाबूजी साहब कहते हैं, फ़रमाते हैं, कि बहुत ही बढ़िया बात है। समझे? आहाहा! कोटा के (ऊँचे) विद्वान हैं। समझे? अध्यात्म का रस है बहुत पुराना। वो कहते हैं कि, आहाहा! बढ़िया बात है! फिर से। फिर से, अपने को कहाँ जल्दी है? टाइम भी बहुत है। टाइम भी अभी बहुत है। आहाहा!

सारे जगत में कोई निमित्त नहीं है। एक दफ़े तो निमित्त को भूल जा। सब उपादान हैं, ये निश्चय से बात करता हूँ, हो। व्यवहार से निमित्त है, तो व्यवहार पूरा ही अभूतार्थ है। व्यवहार पूरा ही अभूतार्थ है।

एक दफ़े ऐसा हुआ, गुरुदेव की हाज़िरी में बनाव बना, गुरुदेव की हाज़िरी में ऐसा बनाव बना कि गुरुदेव ने कहा कि ये कर्म है ना आठ प्रकार का कर्म, वह ज्ञेय है, निमित्त नहीं है। समझे? तो अज्ञानी जीव ने हल्ला मचा दिया, कि नहीं! तो ये आठकर्म का नाम ज्ञेय नहीं है, निमित्त है। समझे? तो आठ कर्म सब एकट्ठे हुए। उनकी सभा भरी हुई कि, भाई! सचमुच अपना नाम निमित्त है कि अपना नाम ज्ञेय है? है क्या? तो कोई विद्वान परमाणु था ना, तो उसने कहा कि सचमुच अपना नाम तो ज्ञेय है। तो यह निमित्त कहाँ से आया? कि अज्ञानी जीव ने हमारा नाम बिगाड़ दिया है। समझे? तो अभी क्या करें? कि यह सोनगढ़ के संत तो ज्ञेय कहते हैं। और सोनगढ़ के संत ज्ञेय कहते हैं, उनको माननेवाले संख्या में कम हैं। ज़्यादा तो मानते नहीं, तो उसका क्या करना चाहिए? समझे? तो प्रतिपक्षवाले कहते हैं कि सोनगढ़ का हमको मान्य नहीं है, तुम सीमंधर भगवान के पास जाओ। तुम्हारी शक्ति तो है, वहाँ से फैसला लाओ। तुम्हारा नाम ज्ञेय है या निमित्त? समझे?

तो पाँच प्रतिनिधि (परमाणु) गए। वे तो एक समय में वहाँ पहुँचते हैं, ऊर्ध्वगमन, तीव्र गति से गमन करें, तो लोक के आगे तो जाता है ना, इतनी शक्ति है, क्रियावतीशक्ति से जाता है। आहाहा! कोई उसको ले जाता नहीं, उसमें कोई निमित्त नहीं है। धर्मास्तिकाय तो निमित्तमात्र है, निमित्त नहीं है। निमित्त अलग और निमित्तमात्र अलग होता है। शाबाश! तो वहाँ गए और सीमंधर भगवान के पास ये पाँच परमाणु खड़े हुए, वे तो त्रिकालवेत्ता हैं ना। उन्होंने कहा कि यहाँ तक आपने धक्का क्यों खाया? यहाँ तक क्यों आये? हमारी ब्राँच ऑफिस तो वहाँ है सोनगढ़ में, वहाँ पूछ लेना था। कि साहब हम (आपकी) ब्राँच ऑफिस में तो गए और ब्राँच ऑफिसवाला तो कहता है कि तुम्हारा नाम निमित्त नहीं है, अज्ञानी ने बिगाड़ दिया है, तुम्हारा नाम तो ज्ञेय है। अच्छा! तो वहाँ से फैसला करके इधर आये, तो (जो) नहीं मानता है, उसको मैंने बात की। अच्छा भैया! जो सीमंधर भगवान ने ज्ञेय कहा, तो हमको मंजूर है। समझे? तो सारे जगत के अंदर, जिसको ज्ञान प्रगट होता है, उसको आठ कर्म ज्ञेयरूप दिखता है। अज्ञानी को निमित्तरूप दिखाई देता है। आहाहा!

ऐसे जगत में एक दफ़े निमित्त मत देख, निमित्त देखने से नैमित्तिक राग उत्पन्न होता है और राग का कर्ता तू बन जाता है। निमित्त नहीं है, तो नैमित्तिक भी नहीं है। राग तो है, राग तो है। तो राग नैमित्तिक है कि क्षणिक-उपादान है? कि क्षणिक-उपादान है। तो उपादान स्वशक्ति को कोई

करनेवाला नहीं है। उपादानकर्ता तो अपने आप है। समझे? उसमें कोई निमित्त की ज़रूरत नहीं है। पहले यह नक्की कर कि भूतार्थनय से पर्याय स्वतंत्र सत् है। क्षणिक-उपादान से देख, तो कर्ताबुद्धि छूट जाती है, अकर्ता ऐसा स्वभाव में आ जाता है और ज्ञान प्रगट होता है, तो ज्ञान का ज्ञेय बन जाता है। क्षणिक-उपादान ज्ञान का ज्ञेय बन जाता है, कर्ता का कर्म नहीं बनता है। तो कर्ता की बात है ही नहीं। है तो ज्ञाता ही स्वभाव। तो ज्ञाता के लिए ज्ञाता का ज्ञेय रखो, थोड़े टाइम के लिए, व्यवहार, बाकी कर्ता का कर्म है नहीं। आज सुना कि बहुत विद्वान आए हैं, बाहर से, बहुत विद्वान आए हैं। अच्छी बात है! खुशी की बात है। विद्वान के भाव में जो आवे, समझे? तो स्व-पर हित का कारण है। आहाहा!

तो आचार्य भगवान फ़रमाते हैं कि होने योग्य होता है, कोई करनेवाला नहीं है। पुण्य-पाप आस्रव-बंध कोई करनेवाला नहीं है। और आत्मा उपादानकर्ता भी नहीं और निमित्तकर्ता भी नहीं है। उपादानकर्ता क्यों नहीं है कि, पुण्य-पाप के परिणाम में तदरूपो न भवति, इस रूप होता नहीं है। क्योंकि पारिणामिकभाव जो है, वह त्रिकाल निष्क्रिय है। निष्क्रियशुद्धपारिणामिक: वो कषायपाहुड़ की गाथा है सारी, जयसेन आचार्य भगवान ने वह गाथा ली है, शास्त्र में। निष्क्रियशुद्धपारिणामिक: पारिणामिकभाव तीनोंकाल निष्क्रिय होता है। आत्मा का स्वभाव पारिणामिकभाव है और पारिणामिकभाव का स्वभाव निष्क्रिय है, वह बंध-मोक्ष का करनेवाला नहीं है। जाननेवाला है, इतना कहो तो कहो। सचमुच तो इसका (आत्म का) जाननेवाला है। आहाहा! निष्क्रिय शुद्ध पारिणामिक है, कषायपाहुड़ का श्लोक है सारा कि बंध-मोक्ष का करनेवाला नहीं है। होता है, उसको कौन करे? और न हो उसको कौन कर सके? तो **होने योग्य**, **होने योग्य और विकार करनेवाला-** निमित्त।

अभी पहले तो भूतार्थनय से जान, स्वतंत्र क्षणिक-उपादान है। क्षणिक-उपादान से पहले ख्याल कर, बाद में जो विभाव है, वह स्वभाव के आश्रय से होता नहीं है। तो उसके लिए कोई निमित्त होना चाहिए। तो निमित्तकर्ता कौन है? उपादानकर्ता, पर्याय का पर्याय (है) और निमित्तकर्ता कर्म का उदय आदि (है), उदय-उपशम-क्षय-क्षयोपशम चारों सद्भाव, अभाव। (कर्म का) सद्भाव निमित्त और अभाव निमित्त, निमित्त के दो प्रकार हैं, मगर ये आत्मा उसमें निमित्त नहीं है। आत्मा को कर्ता भी मत देख और आत्मा को निमित्त भी मत देख। कर्ता भी न देख और कारण भी न देख। निमित्त का अर्थ, कारण नहीं है। निमित्त का अर्थ (यह है) कि कारण नहीं है। पर्याय का कार्य पर्याय में होता है। कारण-कार्य उसमें है। आत्मा (उसका) कारण नहीं है। निमित्तकारण हो, तो नित्य कर्तापना का दोष आ जावे। तो आत्मा तो अनादि का है, तो मोक्ष क्यों नहीं हुआ? यानि मोक्ष का निमित्तकारण भी भगवान आत्मा नहीं है। उपादानकारण भी नहीं है। आहाहा!

यह ज्ञाता की, ज्ञाता की वार्ता चलती है। आहाहा! आत्मा सभी ज्ञाता ही हैं। तीनोंकाल ज्ञाता हैं। स्वीकार करता है, वह विशेष अपेक्षा से ज्ञाता हो जाता है। जैसा ध्यान करता है, वैसा हो जाता है। जैसे पाड़ा (जानवर) का ध्यान करे तो? मैं पाड़ा हो गया, ऐसी भ्रांति हो जाती है। पाड़ा होता तो नहीं। उसमें मर्म है। पाड़ा होता तो नहीं है, मगर पाड़ा होने का भ्रम हो जाता है। ऐसे (ही), है तो ज्ञाता, मानता है मैं कर्ता, तो कर्ता की भ्रांति हो गई, कर्ता होता नहीं है। आहाहा! अकर्ता छूटता नहीं है और कर्ता होता नहीं है। आहाहा!

अपूर्व बात है, शुद्धात्मा की वार्ता! ज्ञानानन्द परमात्मा की वार्ता कोई अपूर्व है। जो परमात्मा है, वह पुण्य-पाप के परिणाम क्यों करे? समझ में आया कुछ? शुद्धात्मा, अशुद्ध पर्याय को क्यों करे? उसको कोई ज़रूरत क्या पड़ी कि करे? समझे? परमात्मा कोई कार्य करता है? परमात्मा को करनेवाला मत देख। शुभाशुभभाव का करनेवाला मत देख! तेरी दृष्टि विपरीत हो जाएगी और परमात्मा तो करनेवाला तो बनेगा ही नहीं, तेरी बुद्धि बिगड़ जाएगी। बुद्धि बिगड़ जायेगी मगर भगवान आत्मा अशुद्ध पर्याय का करनेवाला (नहीं बनेगा)। ज़रूरत क्या है परमात्मा को? बताओ मेरे को, ज़रूरत हो तो काम करे। बताओ, परमात्मा पुण्य-पाप क्यों करे? मेरे को दलील दो। पुण्य-पाप को क्यों करे? धीरज! समझ में आया? ये परमात्मा है, तो परमात्मा पुण्य-पाप क्यों करें? पाँच महाव्रत का परिणाम परमात्मा नहीं करता है और मेरे मुनिराज भी नहीं करते हैं। वो तो जानता है। ये अंदर परमात्मा जलहल ज्योति विराजमान है। सिद्ध समान सदा पद मेरो। आहाहा! अपूर्व बात है! बराबर! परमात्मा को कोई ज़रूरत पड़े तो, तो पुण्य-पाप का परिणाम करे। उसको क्या ज़रूरत पड़ती है?

अच्छा! तो पुण्य-पाप नहीं करता है तो रहने दो, मगर संवर, निर्जरा तो करे कि नहीं? आहाहा! क्या वो शुद्धता से अपूर्ण है, तो पुष्टि के लिए कुछ संवर, निर्जरा करे? और संवर, निर्जराजन्य आनंद का भी भोगता नहीं है, क्योंकि आनंदमूर्ति है आत्मा। आहाहा! भगवान आत्मा आनंद का भी कर्ता नहीं है और भोक्ता नहीं है। आहाहा! क्या कहा? परमात्मा अंदर विराजमान है हो! परमात्मा को तो देखो तो अकारक-अवेदक आत्मा का भान और ज्ञान हो जाता है। ज्ञाता होता है मगर करनेवाला होता नहीं। ज़रूरत क्यों पड़ी संवर, निर्जरा करने की? जो शुद्धता की कमी अंदर हो गयी क्योंकि अनंत-अनंतकाल गया तो, पर्याय में मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र हुआ, तो थोड़ा आत्मा अपूर्ण हो गया, पूर्ण शुद्ध नहीं रहा (तो करे)। ऐसा नहीं है? (नहीं है।) अच्छा! तो नहीं है, तो शुद्धपर्याय को क्या करे? ज़रूरत क्या बताओ मेरे को। ये तो न्याय की बात है। आहाहा! ऐसी बात अंध-श्रद्धा का विषय नहीं है। लॉजिक से, न्याय से बराबर सिद्ध हो सकता है। ज़रूरत (क्या), क्यों करे? हाँ! संवर, निर्जरा होता है, ऐसा रखो। मगर कर्ता है, वो अभी छोड़ दो भैया। वक्त (समय) आ गया है। समझ ले! ज्ञाता है कर्ता नहीं है।

अच्छा मोक्ष का कर्ता है कि नहीं? मोक्ष का कर्ता? क्यों करे? वो (क्या) अपूर्ण है? भगवान आत्मा अपूर्ण है कि मोक्ष करे? केवलज्ञान करे? केवलज्ञान होता है, उसको जानता है। मगर करनेवाला नहीं है। आहाहा! ऐसे होने योग्य पर्याय अपनी योग्यता अनुसार प्रगट होती रहती है, कोई करनेवाला है नहीं। आत्मा को जानते-जानते उसको ज्ञेयरूप से जानता है, ज्ञान। आहाहा! मगर करना आत्मा का स्वभाव भैया नहीं है। परमात्मा को कर्ता देखना, उसका नाम मिथ्यात्व है। क्या कहा? परमात्मा को मोक्ष पर्याय का कर्ता देखना वह मिथ्यात्व है, ऐसा पाठ है परमात्मप्रकाश में। परमात्मप्रकाश में शिष्य ने प्रश्न किया कि साहब आप बंध का कर्ता न कहो तो न कहो मगर मोक्ष का कर्ता तो आत्मा है कि नहीं?

ण वि उप्पज्जइ ण व मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ ।
जिउ परमत्थेँ जोइया जिणवरु एउँ भणेइ ।।६८।।

बंध-मोक्ष का कर्ता, शिष्य ने प्रश्न किया कि बंध का कर्ता न हो तो न हो, मगर मोक्ष का कर्ता है

कि नहीं? कि सुन! जो मोक्ष का करनेवाला है, तो बंध का अभावपूर्वक मोक्ष होता है, तो मोक्ष का करनेवाला है, तो बंध का करनेवाला अपने आप सिद्ध हो गया। ऐसा तीनकाल में बननेवाला नहीं, इसलिए मोक्ष का कर्ता भी नहीं है। अपूर्व चीज़ है! आहाहा! परमात्मा को क्या ज़रूरत पड़े मोक्ष करने की? वो तो मोक्ष स्वरूप है, प्रथम से ही मोक्ष स्वरूप है। अपूर्ण हो तो करे, मगर पूर्ण परमात्मा छलोछल ज्ञानानन्द से भरा है। आहाहा! छलोछल है। सुखसागर, ज्ञानसागर उसका नाम है। सुखसागर और ज्ञानसागर उसका नाम है। रागसागर नहीं है। दुखसागर नहीं है। आहाहा!

परमात्मा को कर्ता मत देख। परमात्मा को ज्ञाता देख। आहाहा! तो तेरे को आनंद आ जाएगा। परमात्मा को, निज परमात्मा को कर्ता देखना वो तो मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र है। ऐसा स्वरूप है नहीं। जीवतत्त्व ऐसा है नहीं।

तो **होने योग्य और विकार करनेवाला** निमित्त का ज्ञान कराया। पहले क्षणिक-उपादान देख, बाद में करनेवाला निमित्तकर्ता कौन है (वो देख)। भगवान आत्मा निमित्तकर्ता नहीं है, तो निमित्तकर्ता दूसरी चीज़ एक है। तो वो पहले क्षणिक-उपादान से देख। बाद में, ये करनेवाला निमित्तकर्ता है, तो वो नैमित्तिक हो गया। निश्चय-व्यवहार, एक समय की पर्याय में निश्चय-व्यवहार का ज्ञान हो गया।

फिर से। क्या कहा? क्षणिक-उपादान देखे तो वो पर्याय का ज्ञान, निश्चयनय से देखा। और कर्म सापेक्ष से देखो तो नैमित्तिक व्यवहार हो गया। आहाहा! निरपेक्ष और सापेक्ष का ज्ञान, ज्ञानी को होता है। निरपेक्ष और सापेक्ष का ज्ञान, अज्ञानी को होता नहीं। है? एक ही, सापेक्ष ही मानता है। कर्म के उदय से राग होता है। कर्म के उदय से राग होता है। आहाहा! यानि पर्याय को पराधीन मान लिया, उसकी दृष्टि विपरीत हो जाती है। भैया! क्या करें? तीव्र क्रोध का उदय आया तो क्रोध हो गया। आहाहा! और शास्त्र में भी वो (ही) आता है, उदयपूर्वक होता है। अरे भैया! व्यवहारनय के निमित्त का ज्ञान कराया है, उसका कर्ता बननेवाला, ऐसा नहीं है भैया तू। शास्त्र का मर्म भी जानते नहीं है।

विकारी होने योग्य और विकार करनेवाला-दोनों पुण्य तथा पाप हैं। एक व्यवहार जीव, जीव और अजीव। (एक) जीव का परिणाम और एक अजीव का परिणाम, पहले दो को भिन्न जानना। दोनों ही उपादान है। अजीव भी उपादान और विकार भी उपादान है। दोनों ही को उपादान देख, निश्चय। बाद में उसको निमित्त और इसको नैमित्तिक, व्यवहार का ज्ञान हो गया। व्यवहार का ज्ञान हो गया। निश्चय के ज्ञान के साथ-साथ व्यवहार का ज्ञान होता है, मगर व्यवहार का पक्ष होता नहीं है। आहाहा!

आस्त्रव होने योग्य और आस्त्रव करनेवाला। होने योग्य बस। महासिद्धांत है। परिणाम होने योग्य होता है। आत्मा उसको जानता है, करनेवाला नहीं है। आहाहा! कर्ताबुद्धि का नाम संसार है। आहाहा! चोखा (स्पष्ट) संसार है। मैं करनेवाला, (ये) अहंकार हो गया। आहाहा! सब मेरे से होता है।

एक दफ़े ऐसा हुआ, कुत्ता है ना कुत्ता। गाड़ा (बैलगाड़ी) नीचे चलता था। गाड़ी, बैलगाड़ी। तो माथा ज़रा-ज़रा उसमें भटकाता था। तो मेरे से बैलगाड़ी चलती है (ऐसा मानने लगा)। उसमें उसको ख़ंजोल (खुजली) आया। क्या? खुजली, खुजली आया तो रुक गया। रुक गया तो बैलगाड़ी तो चलने लगी। ये क्या है? मेरे से चलता है। (अभी) मैं रुक गया, तो उसको रुकना चाहिए। विचार करते-करते-

करते अहंकारबुद्धि छूट गयी। वहीं के वहीं कुत्ते को सम्यग्दर्शन हो गया। अहंकार छूटा, कर्ताबुद्धि छूटी तो ज्ञाता में आ गया। "हुं करूँ, हुं करूँ, ए ज अज्ञानता" अन्यमति हो गया वो तो। ईश्वर का कर्तावादी। अपने को तो सार ग्रहण करना है।

हुं करूँ हुं करूँ ए ज अज्ञानता, शकटनो भार जेम श्वान ताणे।
सृष्टि मंडाल एणी पेरे कोई योगी, योगीश्वरा जाणे।।

सृष्टि की रचना यानि पर्याय की रचना अपने आप होती है, ऐसे कोई योगी, साधक योगीश्वर परमात्मा जानता है। बाक़ी अभिमानी जीव जानता नहीं है। मैं करूँ, मैं करूँ - मर गया। आहाहा! मैं करूँ उसमें मरता है, भावमरण है। आहाहा! **दोनों आस्रव है। संवररूप होने योग्य (संवार्य),** सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का परिणाम होने योग्य प्रगट होता है। उसका नाम **संवर होने योग्य**, धर्म का परिणाम होने योग्य होता है। उसका उपादानकर्ता आत्मा नहीं, निमित्तकर्ता भी आत्मा नहीं है। उसमें पुराना कर्म, ये निमित्तकारण है, सबमें पुराना कर्म लेना। नये कर्म की बात इसमें नहीं है क्योंकि पुराने कर्म (का) सद्भाव और अभाव निमित्त होता है। नया कर्म तो बंधता ही नहीं है। आहाहा! क्या कहा? अलौकिक बात है।

संवर, निर्जरा करनेवाला दोनों संवर हैं। थवा योग्य, होने योग्य संवर और करनेवाला निमित्तकारण। पहले उपादान से देख, बाद में निमित्तकारण से नैमित्तिक को देख। निर्जरा होने योग्य.... भाव निर्जरा के दो प्रकार हैं। शुद्धि की वृद्धि का नाम, संवर का नाम, शुद्धि की प्राप्ति, उपलब्धि, उसका नाम संवर है। निर्जरा का नाम शुद्धि की वृद्धि, अस्ति से। नास्ति से अशुद्धि की हानि और निमित्त से देखो तो कर्म की निर्जरा होती है। **निर्जरा, निर्जरा होनेके योग्य** होती है। आहाहा! आनंद की वृद्धि होने योग्य होती है। आत्मा ने पुरुषार्थ किया तो आनंद बढ़ गया। कैसा पुरुषार्थ किया? कि मैं करनेवाला नहीं हूँ, मैं तो मेरे को जाननेवाला हूँ। ऐसे पुरुषार्थ में शुद्धि की वृद्धि बढ़ जाती है। आहाहा!

आत्मा में जब एकाग्र होता है आत्मा, तब अपने-आप आनंद की वृद्धि होती है। करने से? करने का तो (जब) चौकड़ा लगावे, आहाहा! तब काम होवे। चौकड़ा (क्रॉस), मींडा (शून्य) नहीं। मींडा में तो क्या होता है? शून्य में से एकड़ा (एक) हो जाता है। ऐसा होता है ना बिंदु (०), तो ऐसे खींचे तो एकड़ा हो जाता है। मगर चौकड़ा (cross) में से एकड़ा नहीं होता। क्रॉस, उसमें से एकड़ा होता नहीं। चौकड़ा लगाना चाहिए। आहाहा!

हमारे प्रेमचंदजी बहुत कहते हैं कि पहले चौकड़ा लगाओ कि कर्ता नहीं हूँ। मैं ज्ञाता हूँ। ज्ञाता बनकर समयसार की कथनी जो पढ़ता है और श्रवण करता है, उसका काम बन जाता है। कर्ता का शल्य रखकर जो सुनता है, ये ज्ञानी तो कहे, मगर करना तो चाहिए (ऐसा मानता है)। किये बिना दाल का व्यापार कहाँ से आवे? नहीं तो सारा कुटुम्ब भूखा मर जावे। समझे? अच्छा! तू खिलाता है? अच्छा! क्या अभिमान हो गया तेरे को? ये दाल का व्यापारी है। समझे? संध्या के पिताजी की बात, घर के आदमी का नाम देवें, अन्यथा किसी को गुस्सा हो जावे। समझ गए? भैया, ये तो नाम की बात नहीं है, तत्त्व की बात है। किसी की टीका-टिप्पणी की बात इधर नहीं है। बाहर में बोर्ड लगा है। यह

आत्मकथा, धर्मकथा का स्थान है। विभाव-कथा इधर है नहीं। पर की कथा की सख़्त मनाहीं है। बाहर बोर्ड मैंने तो पढ़ा। मैंने तो पढ़ लिया। आहाहा! इधर विकथा करने की तो सख़्त मनाहीं है। स्वकथा की बात है इधर तो। आहाहा! आत्मकथा!

निर्जरा होनेके योग्य और निर्जरा करनेवाला- आहाहा! पुराना कर्म खिरता है ना, इधर शुद्धि की वृद्धि होती है, **दोनों निर्जरा हैं।** आहाहा! एक भाव निर्जरा और दूसरा द्रव्य निर्जरा, ऐसे सब में लगा लेना। भाव पुण्य, द्रव्य पुण्य, भाव पाप, द्रव्य पाप, ऐसे दो में लगा लेना। **बन्धन करने योग्य और बन्धन करनेवाला। बन्धनेके योग्य और बन्धन करनेवाला-** राग उत्पन्न होता है, उसमें उसका उपयोग जुड़ जाता है। राग का योग, उसका नाम भावबंध है। राग की एकत्वबुद्धि उसका नाम भावबंध है। भावबंध होता है (वो) क्षणिक-उपादान से होता है। मिथ्यात्व के परिणाम का करनेवाला आत्मा को मत देख। आत्मा जो मिथ्यात्व का परिणाम करनेवाला है, तो मिथ्यात्व छूटेगा ही नहीं। मिथ्यात्व तो छोड़ना है सबको। मगर अभी तो मैं मिथ्यात्व का करनेवाला हूँ। मैं परमात्मा हूँ, ऐसा भाव क्यों नहीं आता है? मैं तो परमात्मा हूँ। कभी? तीनोंकाल! अभी भी। आहाहा! वो परिणाम को परिणाम में रहने दो, मैं तो अपरिणामी हूँ। आहाहा! सोगानीजी का वाक्य है। परिणाम को परिणाम में रहने दो। कौन ना बोलता है? परिणाम की अस्ति, मगर मेरे में नास्ति, ऐसी मेरी अस्ति है, उसका अनुभव, उसका नाम मस्ती है। हाँ! अस्ति की मस्ती! आहाहा! परिणाम की ना नहीं बोलता है। उत्पाद-व्यय है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्तम् सत्। गुण-पर्याय वद् द्रव्यम्। कौन ना बोलता है? जीव का असाधारण पाँच भाव है, है सब है, मगर इसमें मैं कौन हूँ? ढूँढ ले। नवतत्त्व में मैं कौन हूँ? पाँच भाव में मैं कौन हूँ? आहाहा! वो ढूँढने से दृष्टि निर्मल हो जाती है। विपरीत दृष्टि छूट जाती है।

निर्जरा करनेवाला-दोनों निर्जरा हैं, और मोक्ष होने योग्य, देखो! मोक्ष होने योग्य होता है। मोक्ष करने से होता नहीं है। अपने परमात्मा सीमंधर प्रभु विराजमान है, उनको अनंत वीर्य प्रगट हो गया है। मोक्ष क्यों करते नहीं है? कि करनेवाला नहीं है। करनेवाला नहीं है, जाननेवाला है। करनेवाला नहीं है। मैं तो जाननहार हूँ, मैं करनेवाला नहीं हूँ। महामंत्र है। महामंत्र है। आहाहा! ये अनंत तीर्थंकर भगवंतो ने कहा कि आत्मा का स्वभाव जाननहार है, करनार नहीं है। आहाहा! मोक्ष होने योग्य होता है।

इधर १३वाँ तीर्थंकर परमात्मा इधर जब होंगे ना, तब उनका (सीमंधर स्वामी का) मोक्ष होगा। दूसरा क्या? कि सीमंधर नाम रहेगा, जीव उसमें बदल जाएगा। नाम बदलता नहीं है। ऐसे बीस तीर्थंकर हैं ना, तो उनका नाम भी शाश्वत। जैसे लोक में कहावत है, नाम उसका नाश, नाम उसका नाश। आत्मा तो अविनाशी है। मगर वहाँ नाम भी शाश्वत है। देखो! कुदरत की गति तो देखो। अभी सीमंधर भगवान हैं, अरिहंत पद में और तीन सीमंधर लाइन में खड़े हैं। एक का जन्म हो गया है, एक कुमार अवस्था में हैं, एक मुनि अवस्था में हैं। मुनि (अरिहंत) अवस्था में जो अभी सीमंधर भगवान हैं, उनका मोक्ष होगा, तब उनको (सीमंधर मुनि को) अरिहंत पर्याय प्रगट होगी। ऐसा अनादि का क्रम है। बीस का नाम शाश्वत है, बाक़ी नया नाम होता है। आहाहा!

मोक्ष होने योग्य तथा मोक्ष करनेवाला- आहाहा! मोक्ष होने योग्य तो उपादान है। पहले

उपादान से देख। निमित्त से मत देख। वो ये उपादान देखेगा, तो कर्म भी ज्ञेयरूप दिखेगा। ऐसा नक्की करके, निश्चय, बाद में व्यवहार। निमित्त कौन? कि कर्म का अभाव। उसका नाम नैमित्तिक है। **मोक्ष होने योग्य**, आहाहा! होने योग्य तो अमृत कथन है। सब होने योग्य होता है। सब जड़-चेतन का परिणाम, धारावाही, क्रमबद्ध पर्याय से होने योग्य होता है। अविरतपणे, कोई करनेवाला नहीं। आत्मा उसको जाननेवाला है। जो जानता है, वो ज्ञानी होता है और मैं कर्ता हूँ, ऐसा मानता है, तो अज्ञानी होता है। आहाहा! एक समय के लिए अज्ञानी है। अज्ञानी का काल लम्बा नहीं है। अज्ञान का काल लम्बा नहीं है। समय एक है और धरावाही देखो तो कोई लम्बा काल नहीं है। क्या कहा? आहाहा!

एक दफ़े सोनगढ़ की बात, २५ साल पहले की बताता हूँ। ये भाईसाहब, वो बस स्टैंड पर आया छोड़ने के लिए। मैंने कहा प्रेमचंद जी पानी तो उष्ण हो गया। ठीक है? तो उष्णता का काल तो ज़्यादा नहीं है, ठंडा हो जाएगा, क्योंकि उसका स्वभाव उष्ण नहीं है। स्वभाव शीतल है, तो शीतल हो जाएगा। ऐसे मिथ्यात्व की पर्याय, अज्ञान की पर्याय, एक समय के लिए है। थोड़ा काल लम्बा हो, किसी को लम्बा, तो भी ऐसे-ऐसे देखो-देखो, आहाहा! तो ये अनादि-अनंत नहीं दिखती है। अज्ञान की पर्याय, अनादि-सांत दिखेगी। आत्मा पर लक्ष्य करके देखो, तो वो पर्याय का ज्ञान अभी हो जाता है। क्या कहा? मेरे में भव नहीं हैं। आहाहा! ऐसा ज्ञान में आ जाता है।

बुख़ार आया शरीर में, है? ये डॉक्टर बैठा है। तो कितना (दिन)? तीन दिन, चार दिन, बस आठ दिन में तो उतर जाता है। वो विभाव है। बुख़ार है वो विभाव है ना। तो विभाव है ना तो उसकी मर्यादा, काल मर्यादा टेम्परेरी होती है। और स्वभाव की मर्यादा नहीं है, स्वभाव तो अनादि-अनंत रहता ही है। आहाहा! मोक्ष होता है, वो पर्याय का स्वभाव है। पर्याय का स्वभाव भी सादि-अनंत है। हुआ मोक्ष, पर्याय और अनंत-अनंत-अनंत काल मोक्ष की पर्याय आएगा। उसमें विभाव बीच में आता नहीं है। पर्याय का स्वभाव भी ऐसा है। हाँ! तो द्रव्य के स्वभाव की बात क्या करें? द्रव्यदृष्टि हो गयी तो अल्पकाल में मुक्ति होनेवाली है। एक वखत का काम है। दर्शन करो एक आत्मा का, प्रथम आत्मा को जानो। प्रथम क्या करना? कि आत्मा को जानना। ये चलता है ना।

मोक्ष होने योग्य और मोक्ष करनेवाला-दोनों मोक्ष हैं; एक भावमोक्ष और एक द्रव्यमोक्ष। दो की मुक्ति हो गयी। क्या कहा? परमाणु को भी छुट्टी मिल गयी। कार्माणवर्गणा से सामान्य परमाणु रह गया। उसकी मुक्ति और इधर पर्याय की मुक्ति। मैं तो त्रिकाल मुक्त हूँ। आहाहा! मैं बंधा ही नहीं हूँ। मुक्त होने वाला मेरा स्वभाव नहीं है। सब अदल-बदल होता है, पर्याय में होता है। पर्याय के अदल-बदल से मेरे में कुछ ज़्यादा कम हो जावे, तीनकाल में होनेवाला नहीं। मैं तो परमात्मा हूँ। आहाहा! परमात्मा का ध्यान करने से आत्मा परमात्मा हो जाता है। परमात्मा का ध्यान करता है ना, जैसा ध्यान करता है ना, ऐसा वो हो जाता है। ऐसा नियम है। सचमुच तो ध्यान भी सहज होता है, मगर उपदेश बोध में ऐसा कहा जाता है कि आत्मा का ध्यान करो। आहाहा!

मोक्ष होने योग्य तथा मोक्ष करनेवाला-दोनों मोक्ष हैं; क्योंकि अभी कारण देते हैं **क्योंकि एकके ही अपने आप पुण्य, पाप, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्षकी उपपत्ति (सिद्धि) नहीं बनती।** अकेला-अकेला आत्मा रागरूप से परिणमणता है, ऐसा बनता नहीं। राग होता है, तब दूसरा

पदार्थ उसमें निमित्त होता है। ऐसे संवर, निर्जरा होता है, तो उसमें दूसरा पदार्थ निमित्त पड़ता है क्योंकि वो निमित्त सापेक्ष से नैमित्तिक है। मगर निमित्त निरपेक्ष से तो वो क्षणिक-उपादान है। क्षणिक-उपादान के दो भेद हैं, एक शुद्ध और एक अशुद्ध। त्रिकाल-उपादान तो त्रिकाल शुद्ध है। उसमें दो भेद नहीं है। पर्याय के अंदर दो भेद हैं। द्रव्य के अंदर भेद हैं नहीं। अभेद में भेद हैं ही नहीं। अभेद में भेद हैं ही नहीं। भेद भेद में, अभेद अभेद में। अकेला-अकेला **उपपत्ति (सिद्धि)** नहीं बनती। ये दोनों जीव और अजीव हैं, जीव यानि व्यवहार जीव। ये ख्याल रखना, जीव यानि व्यवहार जीव और एक दूसरा निमित्त अजीव। जीव और अजीव दो का पर्याय के अंदर निमित्त-नैमित्तिक संबंध बनता है। भगवान आत्मा कर्म के उदय में अवलम्बन करता ही नहीं है, क्योंकि वो तो निरावलंबी तत्त्व है। अवलम्बन करता है, वो अनात्मा है। अवलम्बन करनेवाला मैं नहीं हूँ। मैं तो परमात्मा हूँ ना? मैं किसका अवलम्बन करूँ? आहाहा! परिणाम अवलम्बन करता है और परिणाम में थकावट होती है, तो अवलम्बन उसका छोड़ता है और मेरा अवलम्बन करता है। तो मेरा अवलम्बन करता है, तो उसकी योग्यता से शुद्धि प्रगट होती है। मैं शुद्धि का दान देता नहीं हूँ। अलौकिक बात है! कर्ताबुद्धि छुड़ाने की बात है। भूतार्थ से पर्याय को जान, तो कर्ताबुद्धि छूट जाएगी। आहाहा!

वे दोनों जीव और अजीव हैं। व्यवहार जीव, उपादान, नैमित्तिक और सामने निमित्त अजीव। **(अर्थात् उन दोमेंसे एक जीव है और दूसरा अजीव)**। निमित्त-नैमित्तिक संबंध दो द्रव्य के बीच में नहीं होता है। दो द्रव्य की पर्याय के बीच में क्षणिक निमित्त-नैमित्तिक संबंध बनता है, मगर निमित्त-नैमित्तिक संबंध दो के बीच में अकर्तापने की सिद्धि करता है। भाईसाब! दो द्रव्य के अंदर निमित्त-नैमित्तिक संबंध नहीं है। दो द्रव्य की पर्याय के बीच में निमित्त-नैमित्तिक संबंध होने पर भी कर्ता-कर्म संबंध का तो अभाव है। कर्ता-कर्म संबंध जो हो जाए, तो दो द्रव्य नहीं रहता है। (वो) एक द्रव्य बन जाता है। निमित्त-नैमित्तिक संबंध बनने पर भी कर्ता-कर्म संबंध नहीं है। आहाहा! यानि अकर्ता ही है। वहाँ भी यही आया। फिर-फिर से वो ही आता है, वो ही आता है, ये है सो आता है। सही है? अच्छा! अच्छी बात है। बस ऐसे-ऐसे कहे, थोड़ा सा तो मेरे को अच्छा लगे। क्या मेरे को अच्छा लगे? (उत्साह बिना का) तो मेरे को नहीं अच्छा लगे।

हमारे वहाँ ऐसा है कि एरड़िया होता है ना। एरड़िया (castor oil) पीयें, तो मुँह बिगड़ जाता है। समझे? ऐसे मुँह नहीं बिगाड़ना, प्रफुल्लित होना। आत्मा की बात है ना। ये तो अपने आत्मा की बात है। आहाहा! सब प्रफुल्लित हैं। जितनी मात्रा में समझ में आता है, उतनी मात्रा में आत्मा प्रति आदर और अपेक्षित हर्ष आ जाता है। अंदर में से। आहाहा! ऐसा मेरा स्वरूप है। ऐसा मेरा स्वरूप है। मोक्षमार्ग प्रकाशक में लिखा है ना? ये बात तो मैंने कभी (सुनी ही नहीं)। आहाहा! मेरी बात है। आहाहा! विकथा की तो सख़्त मनाहीं है, बोर्ड है। प्रमुख साहब! प्रमुख साहब बैठे हैं ना इधर। इधर विकथा की सख़्त मनाहीं है। आत्मकथा, धर्मकथा का ये स्थान है। आहाहा! **दोनों जीव और अजीव हैं (अर्थात् उन दोमेंसे एक जीव है और दूसरा अजीव)।** पहला पारा पूरा हो गया अभी दूसरा पारा चलेगा।

ॐ